Introduction

भूमिका

साहित्यिक मध्यकाल का पूर्वार्द्ध हिन्दी में ही नहीं अपितु वर्तमान अन्य भारतीय भाषाओं के इतिहास में भी "भक्तिकाल" नाम से अभिहित है । इससे मध्यकालीन भक्ति-साधना के देश-व्यापी प्रभाव एवं महत्व का अनुमान सहज रूप से किया जा सकता है । ध्यातव्य होगा कि हिन्दी (ब्रजभाषा एवं अवधी भाषा) को ही नहीं, अपितु अन्य भारतीय लोक भाषाओं को भी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी इसी युग के भक्तों एवं संतों द्वारा विरचित भक्ति काव्य को है । इससे क्षेत्रीय भाषाओं के विकास में मध्यकालीन भक्तिकाव्य का अभूतपूर्व योगदान स्वतः सिद्ध है । भाषा एवं साहित्य विषयक अपनी अभूतपूर्व उपलब्धियों के कारण साहित्यिक मध्यकाल हिन्दी कविता का "स्वर्णयुग" कहा ही गया है । इस युग का देश व्यापी भक्ति काव्य मूलतः धार्मिक काव्य है । धर्मदर्शन एवं साधना का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसमें इसकी व्याप्ति न हो । कुल मिलाकर इस युग के भक्ति काव्य का न केवल साहित्यिक अपितु धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक महत्व सर्वस्वीकृत है । इसमें भी ब्रजभाषा में विरचित कृष्ण भक्ति काव्य अपने दूरगामी प्रभाव एवं "सूरसागर" जैसी कालजयी रचना आदि के कारण अपना विशेष महत्व रखता है ।

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य में मेरी रूचि विद्यार्थी जीवन से ही थी । अतः मैंने डॉ० आर०जी० शर्मा से कृष्ण भक्ति काव्य पर शोध - कार्य करने की अपनी इच्छा प्रकट की तो उन्होंने "मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव"- विषय पर कार्य करने का सुझाव दिया, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया । क्योंकि बौद्ध-धर्म -दर्शन पर डॉ० शर्मा का वर्षों का गहन अध्ययन व चिन्तन है, अतः शोध-कार्य की रूपरेखा भी सरलता से निश्चित हो गई ।

अपने प्रयत्न को जारी रखते हुए भक्ति के स्रोत, स्वरूप, सिद्धान्त, कवि, कृति, मध्यकालीन धर्म एवं साधना आदि से सम्बन्धित ग्रंथों एवं शोध कार्यों के मनोयोग-पूर्ण अध्ययन से भक्ति काव्य की प्रवर्त्तमान समालोचना की स्थिति के विषय में जो चित्र उभरा वह संक्षेप में इस प्रकार है -

।1। अध्ययन का प्रमुख विषय रहा है - साहित्यिक मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत में ब्रज एवं अवधी में रचित भक्ति काव्य ।

।2। श्रीमद्भागवत् पुराण माहात्म्य ।2/48। में भक्ति कहती हैं - "मैं द्रविड़ में उत्पन्न हुई, वहाँ से कर्नाटक गयी, फिर महाराष्ट्र में, गुजरात में मैं जीर्ण हो गयी । वृन्दावन में मैंने अपने दोनों पुत्रों ।ज्ञान व वैराग्य। सहित पुन: यौवन प्राप्त किया, आदि । "उत्पन्ना द्राविडै" उक्ति ने भक्ति के मूल स्रोत विषयक अवधारणा को दूर तक प्रभावित किया है ।

अधिकांश विद्वानों ने भक्ति की उत्पत्ति का क्षेत्र "द्रविड़-देश" ।तमिल प्रान्त। माना है । दक्षिण क्षेत्र को भक्ति का मूलभूत क्षेत्र या जन्म स्थान मानने वाले विद्वानों को उनके मतान्तर के आधार पर मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - पहला वर्ग उन विद्वानों का है जो मानते हैं - भक्ति का स्रोत अभारतीय है । दूसरे वर्ग में वे विद्वान आते हैं जिनका मत है - भक्ति का स्रोत भारतीय है ।

।। भक्ति के स्रोत को अभारतीय मानने वाले विद्वानों के भी दो भाग हैं - यथा -

।। वे जो भक्ति को दक्षिण में उत्पन्न तो मानते हैं किन्तु उसका मूल स्रोत ईसाई धर्म को स्वीकारते हैं । ग्रीयर्सन एवं लूथन प्रभृति अंग्रेज विद्वानों का मत है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में ही भारत के दक्षिण तटीय क्षेत्र में ईसाई चर्च की स्थापना हो चुकी थी, व मध्यकालीन भक्ति उसी ईश्वर के प्रति प्रेम व समर्पण की पर्याय है, जिसे क्रिश्चियनिटी में "डिवोशन और लव फॉर गॉड" कहते हैं । इस प्रकार इन विद्वानों ने मध्यकालीन भक्ति का प्रेरणा स्रोत ईसाई-धर्म को बताया ।

।।। भक्ति का स्रोत अभारतीय मानने वाले वर्ग में दूसरा मत उन विद्वानों का है जो भक्ति को इस्लाम से प्रेरित बतलाते हैं । डॉ0 ताराचन्द एवं हुमायूँ कबीर आदि विद्वानों का मानना है कि दक्षिण भारत में इस्लाम का अस्तित्व साहित्यिक मध्यकाल से पूर्व विद्यमान था । दक्षिण भारत से भक्ति का जो रूप उत्तर भारत में आया वह इस्लाम से प्रेरित है । इस्लाम में स्वीकृत अल्लाह ।एक ईश्वर। के प्रति प्रेम व समर्पण का भाव ही मध्यकालीन

भक्ति में पाया जाता है ।

इस प्रकार उक्त दोनों वर्गों के विद्वानों में दक्षिण भारत के तटीय क्षेत्र में साहित्यिक मध्यकाल से पूर्व क्रमशः ईसाई धर्म एवं इस्लाम धर्म का अस्तित्व सिद्ध करके और मध्यकालीन भक्ति को ईश्वर के प्रति प्रेम व समर्पण (शरणागति) का भाव बताकर अपने अपने मत का प्रतिपादन किया है ।

भक्ति के अभारतीय स्रोत विषयक उक्त मान्यताओं का न्यायसंगत एवं प्रमाणपुष्ट खण्डन हमारे पूर्ववर्ती विद्वानों, विशेषतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति द्वारा किया जा चुका है । इन विद्वानों की मान्यतायें हमें ग्राह्य हैं ।

2। जिन विद्वानों ने भक्ति का स्रोत भारतीय माना हैं उन्हें भी दो उपभेदों में विभक्त किया जा सकता है - यथा -

।। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि भक्ति का स्रोत दक्षिण भारत का तमिल क्षेत्र है । आलवार संत इसके मूल प्रणेता हैं । भक्ति के मूलभूत चारों सम्प्रदायों के आचार्य दाक्षिणात्य हैं । इन्हीं आचार्यों, किन्तु विशेष रूप से रामानुज की शिष्य परम्परा में आने वाले स्वामी रामानन्द ने भक्ति के दोनों स्वरूपों (निर्गुण एवं सगुण) का प्रचार उत्तर भारत में किया । उत्तर भारत के भक्ति के चारों या पाँचों सम्प्रदाय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दक्षिण के चारों सम्प्रदायों से सम्बद्ध है । इत्यादि ।

।।। विद्वानों का दूसरा वर्ग मानता है कि भक्ति ईसा पूर्व से ही उत्तर भारत में थी, वहाँ से दक्षिण में गई, वहाँ से पुनः अपने नये रूप में उत्तर में आई । इन विद्वानों ने भक्ति को ईसा व मोहम्मद पैगम्बर के जन्म से पूर्व सिद्ध करते हुए उसे वैदिक साहित्य व परम्परा में खोजने का प्रयत्न किया । इन विद्वानों में डॉ० मुन्शीराम शर्मा, आचार्य बलदेव उपाध्याय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

भक्ति के भारतीय स्रोत विषयक उपर्युक्त मान्यताएं भी सन्देह से परे नहीं है । इस प्रकार के निष्कर्षों को प्रमाणित करने वाले ऐतिहासिक प्रमाणों का अभाव है । इस प्रकार के निष्कर्ष या तो अनुमानाश्रित हैं अथवा कतिपय साम्प्रदायिक साहित्य में उपलब्ध उल्लेखों के आधार पर है, जिनकी ऐतिहासिकता या सच्चाई सन्देह से परे नहीं है । उदाहरण के लिए स्वामी रामानन्द व सारा व्यक्तित्व एवं कृतित्व किंवदन्तियों एवं अप्रमाणिक सामग्री (रचनाओं) पर आधारित है । मुख्य बात यह है कि दक्षिण की भक्ति के स्वरूप व उत्तर की भक्ति के स्वरूप में मूलभूत अन्तर है । प्रवर्त्तमान आलोचनात्मक साहित्य में इस तथ्य की अनदेखी की गयी है ।

वैदिक परम्परा से जिन विद्वानों ने मध्यकालीन भक्ति को जोड़ा है, उन्होंने भक्ति का व्यापक अर्थ लिया है । वहां भक्ति का अर्थ किया गया है - उपासना । यदि हम इस व्यापक अर्थ को स्वीकार करें तो दुनिया का कोई भी धर्म, सम्प्रदाय "भक्ति" से रहित नहीं कहा जा सकता । और इस स्थिति में मध्यकालीन भक्ति विशेषकर "कृष्ण भक्ति" का वैशिष्ट्य ही सुरक्षित नहीं रहता । अतः यह मान्यता भी ग्राह्य नहीं हो सकती ।

इस प्रकार जहाँ एक ओर भक्ति-भाव को अभारतीय सिद्ध करना प्रमाण पुष्ट और तटस्थ भाव से प्रेरित नहीं है, वहीं दूसरी ओर भक्ति पौराणिक धर्म है, और इसलिए इसका मूल स्रोत वैदिक परम्परा है, जैसी मान्यताएं भी निरापद नहीं है । इस वाद-विवाद के तर्क जाल और अपने पक्ष को प्रमाणित सिद्ध करने के लिए स्वीकार किये गये अपनी-अपनी अनुकूलता के प्रमाण आदि की आपाधापी में मध्यकालीन हिन्दी काव्य और विशेषकर कृष्ण भक्ति काव्य का ऐतिहासिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में तटस्थ एवं तथ्य परक गवेषणामूलक अध्ययन संभव नहीं हो पाया है ।

मध्यकालीन भक्ति विशेष रूप से कृष्ण भक्ति के मूल स्रोत को खोज निकालने का हमारे पास एक ही विश्वसनीय उपाय शेष रहता है और वह यह है कि पहले मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के स्वरूप को आत्मसात् कर लिया जाए, तत्पश्चात् उसके स्वरूपगत साम्य के आधार पर उसकी प्राचीन परम्परा को खोज निकाला जाए । इस दृष्टि से देखने पर भक्ति के स्वरूप के विषय में कहा जा सकता है कि भक्ति के स्वरूप के निर्धारक सभी आकर (मान्य) ग्रन्थों में मध्यकालीन कृष्ण भक्ति को "प्रेम स्वरूपा" कहा गया है । यथा-

1. सा परम प्रेम स्वरूपा - नारद भक्ति सूत्र-2
2. सा परानुरक्तिरीश्वरे - शाण्डिल्य भक्ति सूत्र-2
3. सानुरागरूपा - अंगिरा - दैवी मीमांसा सूत्र
4. स वै पुंसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
   अहैतुक्य प्रतिहता यथाऽत्मा संप्रसीदति ।।
   - भागवत 1/2/6.

इन सभी ग्रन्थों में कृष्ण-भक्ति में स्वीकृत प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक ही उदाहरण दिया गया है, और वह है - कृष्ण व गोपियों का प्रेम ।

1. यथा व्रज वल्लभीनाम - शाण्डिल्य भक्ति सूत्र-2
2. यथा व्रज गोपिकानाम - नारद भक्ति सूत्र-2
3. हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका: - भागवत् महात्म्य - 2-18

इससे निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि कृष्ण भक्ति में स्वीकृत प्रेम का स्वरूप कृष्ण-गोपी-प्रेम जैसा है, अर्थात् युगल भाव का है । कृष्ण भक्ति में स्वीकृत प्रेम के इस स्वरूप को लक्ष्य में रखकर जब हम साधना मार्ग की पूर्व परम्पराओं पर दृष्टि डालते हैं तो एक ही साधना ऐसी मिलती है जिसका मध्यकालीन कृष्ण भक्ति से स्वरूपगत साम्य है । कृष्ण भक्ति की तरह वहाँ पर भी प्रेम द्वारा मोक्ष लाभ का मार्ग स्वीकार किया गया है और यह साधना मार्ग है - बौद्ध तांत्रिकों की राग साधना । जिसे सहज-साधना, युगनद्ध आदि अनेक नाम दिये गए हैं - "रागेण बन्ध्यते लोको, रागेणैव विमुच्य अर्थात् बौद्ध तांत्रिकों का मानना है कि राग (प्रेम) से ही मनुष्य बन्धन में बंधता है, उसी को उपाय रूप में अपनाकर मुक्त हो जाता है । अर्थात् रागसाधना द्वारा मोक्ष प्राप्ति का वे समर्थन करते हैं । बौद्ध तांत्रिकों की रागसाधना के स्वरूप और मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य में स्वीकृत प्रेम के स्वरूप में मूलभूत साम्य पाया जाता है । इसी सम्भावना को आधार बनाकर हमने यह शोध कार्य सम्पन्न किया ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य एवं भक्ति काव्य की संत परम्परा पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का निरूपण करने वाले कतिपय शोध कार्य भी किए जा चुके हैं - यथा -

1. डॉ० विद्यावती मालविका - हिन्दी सन्त साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव ।
2. डॉ० सरला त्रिगुणायत - मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध - धर्म का प्रभाव, आदि ।

उपर्युक्त शोध कार्य में बौद्ध-धर्म की मूलभूत मान्यताओं अर्थात् बुद्धोपदिष्ट चार आर्य सत्य, प्रतीत्यसमुत्पादवाद, आर्य अष्टांगिक मार्ग एवं द्वादश निदान, निर्वाण आदि का क्रमशः हिन्दी सन्त साहित्य तथा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव अथवा विचार साम्य खोजने के प्रयत्न किये गये हैं, किन्तु मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के प्रादुर्भाव एवं उसके विकासकाल (या अस्तित्वकाल) में भी निर्णायक प्रभाव डालने में सक्षम बौद्ध तांत्रिकों की प्रच्छन्न परम्पराओं की सर्वत्र अनदेखी की गई है । परिणाम स्वरूप उक्त प्रकार के शोध कार्य भी मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के स्रोत, स्वरूप और सिद्धान्त के न्याय संगत निष्कर्ष निकालने और प्रवर्त्तित असंगतियों एवं भ्रान्तियों के निराकरण में अपेक्षित योगदान नहीं कर पाये ।

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के गवेषणात्मक अध्ययनों की परम्परा में लक्षित उपर्युक्त क्षतियों के निराकरण में उपयोगी समझ कर प्रस्तुत विषय - "मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य पर बौद्ध - धर्म का प्रभाव" को अपने शोध कार्य के लिए चुना गया है ।

विवेचनात्मक विश्लेषण की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है -

(1) प्रथम अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत अनुशीलन की पृष्ठभूमि के रूप में शाक्य मुनि गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध - धर्म का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय दिया गया है । बुद्ध भगवान का जीवन परिचय, उनके चार आर्य सत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मूल शिक्षाओं व उपदेशों आदि को यहाँ संक्षेप में स्पष्ट किया गया है । इसके साथ ही बुद्ध द्वारा प्रथम धर्म-देशना, संघ की स्थापना एवं संघ-संरचना का मूलभूत आधार, बुद्ध के प्रमुख शिष्य-शिष्याओं का नामोल्लेख, चार प्रमुख संगीतियों का परिचय, संघ का विघटन, महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त बौद्ध-धर्म के प्रमुख यानों (1) हीन-यान, (2) प्रत्येक बुद्धयान, (3) महायान, चार दार्शनिक सम्प्रदायों - (वैभाषिक, सौतान्त्रिक, योगाचार व माध्यमिक) का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय देकर बौद्ध-परम्परा का क्रमिक विकास दिया गया है । इसी अध्याय के अन्तर्गत आगे बौद्ध तांत्रिक यानों का भी उल्लेख किया गया है । -

इनके परम्परागत विकास ।पारमितानय व मंत्रनय। को भी स्पष्ट किया गया है । इस प्रकार प्रथम अध्याय में मुख्य रूप से बौद्ध - धर्म के विकास के ऐतिहासिक स्वरूप पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है । विशेष रूप से बौद्ध धर्म के प्रारम्भ से लेकर मध्यकाल तक के क्रमिक विकास व उतार-चढ़ाव पर विचार किया गया है । जिसके अन्तर्गत बौद्ध - परम्परा के भग्नावशेष स्वरूप जो विविध सम्प्रदाय थे, उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों ।धर्मान्तरण व रूपान्तरण। पर विशेष प्रकाश डाला गया है । उनकी धर्मान्तरण व रूपान्तरण की इन प्रवृत्तियों के विश्लेषण से यह फलित होता है कि मध्यकाल तक, अर्थात् भक्तिकाल तक भी बौद्ध विविध छद्मवेश धारण करके तत्कालीन धार्मिक परम्पराओं में अपनी परम्परागत मान्यताओं का प्रचार करने में सक्रिय थे । भक्ति साहित्य में भी, भक्ति के स्वरूप आदि के निर्णय में, उनका निर्णायक योगदान रहा । सहजिया वैष्णवों के माध्यम से भागवत् वैष्णवों के अन्तर्गत बौद्ध धर्म सक्रिय रूप से जीवित था । इससे मध्यकालीन भक्ति, विशेष रूप से कृष्ण भक्ति पर बौद्ध मान्यताओं का प्रभाव खोजना प्रासंगिक सिद्ध होता है ।

।2। द्वितीय अध्याय का विषय "बौद्ध - धर्म - दर्शन" है । जिसके अन्तर्गत बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों के क्रमिक विकास को प्रस्तुत किया गया है । यहाँ भगवान बुद्ध की मध्यम प्रतिपदा, उनके चार आर्य सत्य तथा उनका विश्लेषण, आर्य अष्टांगिक मार्ग द्वादश निदान, पदार्थ मीमांसा, संस्कृत और असंस्कृत धर्म, पंचशील, चार ब्रह्म-विहार आदि का परिचय दिया गया है । भगवान बुद्ध के दार्शनिक सिद्धान्त पक्ष को अर्थात् अव्याकृत प्रश्न प्रतीत्य समुत्पाद, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद व निर्वाण सम्बन्धी उनके विचारों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है । तत्पश्चात् बौद्ध-धर्म के चार प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदायों के दार्शनिक विचारों का उल्लेख किया गया है । साथ ही बौद्ध-धर्म के तांत्रिक यानों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । बौद्ध परम्परा ।श्रमण परम्परा। का ब्राह्मण परम्परा ।वैदिक परम्परा। से विरोध तथा बौद्धों की योग साधना पर भी प्रस्तुत अध्याय मे प्रकाश डाला गया है ।

(3) उक्त प्रथम दो अध्यायों की पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में तृतीय अध्याय में मध्यकालीन कृष्ण - भक्ति के स्रोत, स्वरूप एवं परम्परा का निरूपण किया गया है । इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम "भक्ति" शब्द की व्युत्पत्ति, इस शब्द का वैदिक वांगमय में प्रयोग और उसके अर्थ को लक्षित करके मध्यकालीन भक्ति साहित्य में भक्ति शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । तदनन्तर भक्ति के प्राचीन (दक्षिण भारतीय) व मध्यकालीन (उत्तर भारतीय) प्रमुख आचार्यों व उनके सम्प्रदायों का संक्षेप में परिचय दिया गया है । प्राचीन भक्ति के सम्प्रदायों की भक्ति से मध्यकालीन उत्तर भारतीय भक्ति सम्प्रदायों की भक्ति के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । अर्थात् दक्षिणी भक्ति से उत्तर की भक्ति किन-किन आधारों पर पृथक है ? इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । इस प्रकार उत्तर भारत के कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित सम्प्रदायों से दक्षिण भारत के परम्परागतमान्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार किया गया है । जिसे उपलब्ध सामग्री के आधार पर अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । बौद्ध - धर्म से मध्यकालीन कृष्ण भक्ति का सम्बन्ध खोने के लिए सर्व-प्रथम बौद्ध तांत्रिकों की राग-साधना व "राग" का इस साधना में अर्थात् तांत्रिक साधना में जो महत्व है, उसे दिखाने का प्रयास किया गया है । बौद्धों की राग साधना के महत्वपूर्ण अवयव गुरू, प्रज्ञोपाय, युगनद्ध आदि का परिचय देते हुए सप्रमाण राग-साधना के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । बौद्धों की अनुत्तर पूजा जिसके साथ (या आठ) अंग हैं, का उल्लेख करते हुए, बौद्ध परम्परा को ही आगे बढ़ाने वाले वैष्णव सहजियाओं, पंच सखाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है । मध्यकालीन कृष्ण भक्ति से सहजिया वैष्णवों के परम्परागत सम्बन्धों को यहाँ प्रकाश में लाया गया है । साथ ही इस अध्याय के अन्तर्गत हमने देखा है कि बौद्धों की यान, उपयान परम्परा किस प्रकार एक-दूसरे यानों उपयानों में परिवर्तित होती हुई अन्ततः मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने में सफल रही । इस प्रकार तृतीय अध्याय के अन्तर्गत बौद्ध परम्परा के विकास व कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों से उसके परम्परागत सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है ।

(14) चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत ऐतिहासिक क्रम के आधार पर हमने सर्वप्रथम कृष्णभक्ति काव्य परम्परा में आने वाले गौड़ीय (चैतन्य) सम्प्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य को लिया है । इस सम्प्रदाय के संस्थापक बंग प्रदेशीय चैतन्य महाप्रभु थे । बंगाल में ही इस सम्प्रदाय का जन्म हुआ । जिस समय चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव बंगाल में हुआ उस समय बौद्ध सहजयान के भग्नावशेष वहाँ विद्यमान थे । उनका बंगाल के (पूर्वी भारत के) धार्मिक क्षेत्र में व्यापक प्रभाव विद्यमान था । यद्यपि वे अपने मूल-रूप में नहीं थे, किन्तु वैष्णव सहजिया के रूप में वे छद्मवेश में रह रहे थें । इन सहजिया वैष्णवों में प्रारम्भ से ही परम्परागत रागसाधना चली आ रही थी और इस रागसाधना में परकीयाभाव विद्यमान था । सम्बन्धित देश-काल में इस रागमार्गी भक्ति का व्यापक प्रभाव विद्यमान था, जिससे तत्कालीन समाज का प्रभावित होना स्वाभाविक था । चैतन्य की भक्ति पर भी इस प्रेमानुगा भक्ति का प्रभाव पड़ा । चैतन्य की गौड़ीय-भक्ति के मूल में यही रागमार्ग विद्यमान है । यही गौड़ीय सम्प्रदाय बंगाल से वृन्दावन आया और वृन्दावन के कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में यह रागसाधना अपना ली गयी । क्योंकि चैतन्य स्वयं सहजिया वैष्णव चण्डीदास जयदेव व विद्यापति के काव्य (गीतों) से विशेष रूप से प्रभावित थे और इन कवियों ने राधा-माधव नाम का आश्रय लेकर प्रेम के गीत रचे जिन्हें सुन कर चैतन्य महाप्रभु आनन्द से विभोर होकर मूर्च्छित हो जाया करते थे । प्रथम अध्याय में हमने यह दिखाने का प्रयास किया था कि जब बंगाल से बौद्धों का विनाश होना प्रारम्भ हुआ तो वे छद्म वेश में या तो वैष्णव परम्परा में प्रविष्ट हो गए या मुसलमान धर्म स्वीकारने के लिए विवश हुए । वैष्णव परम्परा में प्रविष्ट होने पर भी वे अपनी मूल प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं होने पाये, और राग साधना यथावत् चलती रही । गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय ऐसे ही बौद्धों के प्रभाव से प्रभावित कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय था । इस अध्याय में हमने गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य और कवियों का नामोल्लेख करते हुए उनके काव्य (गीतों) पर बौद्ध धर्म का प्रभाव खोजने का प्रयास किया है । इनके चिन्तन एवं साधना पक्ष पर जो बौद्ध प्रभाव परिलक्षित होता है उसे हमने संन्यास मूर्ति पूजा, गुरू की श्रेष्ठता, शरणागति, कर्मनिन्दा, कामनिन्दा, संकीर्तनवाद्य नृत्य तथा गायन, अद्वैतभाव, परकीयाभाव, रागमार्ग आदि शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

चैतन्य सम्प्रदाय में भागवत् को आधार बना कर जीवगोस्वामी व रूपगोस्वामी द्वारा लिखे गये शास्त्र (भक्ति रसामृत सिन्धु व भक्ति रसायन आदि) चैतन्य के बाद के हैं । इनके द्वारा गौड़ीय भक्ति को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने की चेष्टा परवर्ती काल की है ।

(5) पंचम अध्याय के अन्तर्गत हमने पुष्टिमार्गी कृष्णभक्ति साहित्य को लिया है जो कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय है । इस अध्याय के अन्तर्गत हमने सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय के संस्थापक वल्लभाचार्यजी का संक्षिप्त परिचय, उनके सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएं व उन प्रमुख भक्त तथा कवियों का उल्लेख किया है, जो "अष्टछाप" के नाम से इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रसिद्ध हुए हैं । पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय पर बौद्ध - धर्म का प्रभाव कहाँ-कहाँ व कौन-कौन से सन्दर्भों में खोजा जा सकता है ? इसके लिए हमने इसे कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया है; जो इस प्रकार हैं - दु:खवाद, निराशावाद, क्षणभंगुरवाद, शरीर निन्दा, अर्थनिन्दा, व्यक्तिवाद, संन्यास का समर्थन आदि । इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म की तरह गुरू का सर्वाधिक महत्व, अवतारवाद, चार ब्रह्मविहार, मनोराज्य आदि भी यहाँ प्राप्त हो जाते हैं, जिनका कि हमने इस अध्याय में संक्षेप में उल्लेख किया है । मुख्य बात यह है कि बौद्धों की प्रज्ञोपाय साधना व इस सम्प्रदाय के कृष्ण-गोपी केलिविलास में समानता को खोजने का यहाँ प्रयास किया गया है । बौद्ध तांत्रिकों की तरह इन्होंने भी योग में भोग, परकीया प्रेम, प्रेम की सहज भावना, अमर्यादित श्रृंगार, भुक्ति मुक्ति प्रधान साधना को अपने भक्ति काव्य में स्थान दिया है । तांत्रिक बौद्ध-साधना के अन्य अवयव भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ इनके काव्य में मिल जाते हैं, जैसे राजपथ, महासुख, विपरीत रति आदि । इस अध्याय के अन्तर्गत किए गये विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि रागात्मिका भक्ति अर्थात् माधुर्यभाव की भक्ति का मूल-स्त्रोत बौद्ध तांत्रिकों की रागानुगा साधना होनी चाहिए । निष्कर्ष यह है कि कृष्ण-भक्ति के कृष्णराधा अथवा गोपीकृष्ण बंगाली वैष्णव सहजयानियों के राधा-माधव के माध्यम से सहजिया बौद्धों के प्रज्ञा - उपाय के विकासात्मक रूपान्तर हैं ।

§6§ षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत "राधावल्लभीय कृष्णभक्ति काव्य" को लिया गया है । हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में कृष्णभक्ति परम्परा में रागतत्व की प्रधानता रही । कदाचित् यही कारण था कि इसी रागानुगा भक्ति को आधार बनाकर कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत अनेक सम्प्रदाय उभर कर सामने आये । इसी परम्परा में राधावल्लभीय सम्प्रदाय की भी गणना की जाती है । इस अध्याय में हमने इस सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय व इसके मुख्य संस्थापक "स्वामी हितहरिवंशजी" के अतिरिक्त इस _ के प्रमुख भक्त कवियों का नामोल्लेख किया है । इस सम्प्रदाय की मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी भक्ति में राधा को कृष्ण से पहले स्थान दिया । राधा इनकी स्वामिनी हैं । जिस प्रकार बौद्ध तांत्रिक सिद्धों ने कहीं प्रज्ञा §स्त्री§ को तो कहीं उपाय §पुरुष§ को अधिक महत्व दिया, ठीक उसी प्रकार इन कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में कहीं कृष्ण तो कहीं राधा एकदूसरे से प्रथम स्थान में रखे गये । राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा कृष्ण से पहले स्थान में निरूपित की गईं । इस सम्प्रदाय पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव खोजने के लिए हमने पुन: उन्हीं शीर्षकों का सहारा लिया जो कि निवृत्ति प्रधान धर्मों की विशेषताएँ हैं - जैसे संन्यास, गुरु की श्रेष्ठता, नाममहिमा, वैदिक मान्यताओं का खण्डन, सामाजिक सम्बन्धों की व्यर्थता, सम्प्रदायवाद आदि । इसके अतिरिक्त बौद्ध-तांत्रिकों की रागसाधना का इस सम्प्रदाय पर गहरा प्रभाव है । रागसाधना के रूप में इन्होंने भी कृष्णराधा के अद्वय स्वरूप §अहर्निश केलि - विलास§ का वर्णन किया है । बौद्धों के युगनद्ध से साम्य रखती इनकी समरसता की भावना में राधा-कृष्ण की नित्यवृन्दावन में होने वाली अनवरत प्रेमलीलाओं को लिया जा सकता है । इसके अतिरिक्त षष्ठ अध्याय में इनके महारस अथवा मधुररस, भक्ति अथवा भोग तथा श्रृंगार वर्णन पर बौद्ध-धर्म की रागसाधना का प्रभाव खोजने का प्रयत्न किया है । इनके श्रृंगारपक्ष पर बौद्ध-रागसाधना का प्रभाव सहज ही प्राप्त हो जाता है, इस तथ्य को हमने इस अध्याय में उदाहरण सहित प्रस्तुत करने की चेष्टा की है । यह सम्प्रदाय "रसिक सम्प्रदाय" के रूप में भी अपनी पहचान रखता है । वे राग को रसरूप में स्वीकार करते हैं । उनका रागात्मक भक्ति रूपी रस ही इन्हें रसिक बनाता है ।

प्राचीन बौद्ध-धर्म की परम्परा में वैराग्य की भावना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान था । त्याग, तप, संन्यास, योग, ब्रह्मचर्य एकान्त का वहाँ महत्व था । तांत्रिक बौद्ध साधकों ने बाद में अपनी साधना को वैराग्य साधना न कहकर, राग-साधना के रूप में प्रस्तुत किया । इसलिए इनके चिन्तन में वैराग्य की जगह राग, दु:खवाद की जगह सुखवाद, नित्यदु:ख की जगह नित्य-आनन्द और मोक्ष की जगह सहजानन्द या परमानन्द को अपनाया गया । योग की प्रवृत्ति भोग में परिवर्तित हो गयी । कृष्ण भक्ति के रसिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत आनेवाला आनन्दवाद भी बौद्धों की देन है, इसलिए इस सम्प्रदाय पर बौद्ध-प्रभाव होना स्वत: सिद्ध हो जाता है ।

(7) सप्तम अध्याय में कृष्ण-भक्ति परम्परा में आने वाले "हरिदासी (या सखी) सम्प्रदाय" को लिया गया है । यह भी एक प्रेमाभक्ति प्रधान सम्प्रदाय है । किन्तु ये लोग स्वयं को कृष्ण की सखी के रूप में देखते हैं । अर्थात् कृष्णराधा की रागसाधना में ये सखीरूप में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं, ऐसा ये मानते हैं । इनकी रागानुगाभक्ति पर बौद्ध तांत्रिक प्रभाव खोजने के लिए इसे प्रेमाभक्ति, अमर्यादित श्रृंगार, महारस आदि शीर्षकों में रखा गया है । इसके साथ ही इस सम्प्रदाय पर बौद्ध-धर्म के प्रभाव को संन्यास, व्यक्तिवाद, शरणागति, दु:खवाद, अनित्यतावाद, कामनिन्दा, भाग्यवाद, वैदिक धर्म का विरोध, सम्प्रदायवाद आदि रूपों में भी खोजने का प्रयास किया है । यह भी राधावल्लभीय सम्प्रदाय की परम्परा का एक रसिक सम्प्रदाय है । प्राय: दोनों में समानता अधिक होने के कारण दोनों को एक ही समझ लिया जाता है, किन्तु दोनों सम्प्रदाय वस्तुत: अलग-अलग हैं । सखी सम्प्रदाय में पाये जाने वाले सुखवाद व बौद्धों के आनन्दवाद में गहरी समानता है । इस तथ्य को हमने इस अध्याय में महारस शीर्षक के अन्तर्गत खोजने का प्रयास किया है ।

(8) अष्टम अध्याय उपसंहार के रूप में है । इसमें प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की उपलब्धियों पर एक विहंगम दृष्टि डाली गयी है ।

उपलब्ध सीमित सामग्री के आधार पर मैंने यह शोध कार्य किया है, जो अन्तर्बाह्य साक्ष्यों पर आधारित है, ।और बिना किसी साम्प्रदायक भेदभाव या पक्षपात के तटस्थ भाव से किया गया है ।। उन साक्ष्यों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में निरीक्षण एवं परीक्षण करके कुछ ऐसे निष्कर्ष निकले हैं, जो पूर्ववर्ती अध्ययनों की विसंगतियों को दूर करते हैं और विवादास्पद प्रश्नों के सही उत्तर स्वरूप हैं, जो भविष्य के अध्येताओं या शोधकर्ताओं के लिए निश्चित रूप से उपयोगी सिद्ध होंगे । यही हमारा योगदान होगा । विषय अपने आप में नवीन तो है ही । इस अध्ययन का कोई भी निष्कर्ष निराधार नहीं है । हमने यथासाध्य प्रामाणिक तथ्यों और आधारों की भूमिका पर रखकर इसे पूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न किया है, फिर भी यत्र - तत्र जो त्रुटियाँ रह गयी हों, उनके विषय में अपनी अज्ञानता के लिए मैं विद्वजनों के समक्ष क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पन्न करने के लिए मैं सर्वप्रथम अपने गुरू एवं निर्देशक श्रद्धेय डॉ० आर०जी० शर्मा का हार्दिक आभार स्वीकार करती हूँ । जिनकी सतत् प्रेरणा मुझे प्राप्त होती रही व जिन्होंने मुझे हर सम्भव सहायता इस सन्दर्भ में प्रदान की । मैं हृदय से डॉ० साहब का ऋण स्वीकार करती हूँ ।

डॉ० पी०एन० झा साहब ।वर्तमान विभागाध्यक्ष महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय। के प्रति भी मैं श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने सम्बन्धित साहित्य उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की । डॉ० यामिनी गौतम ।दिल्ली विश्वविद्यालय। के प्रति भी मैं श्रद्धापूर्वक नमन करती हूँ, जिन्होंने मेरा उत्साह बनाये रखा व अपने अनुकरणीय व्यक्तित्व के आधार पर मेरी प्रेरणा स्रोत बनी रहीं ।

परमपूज्य काका गोवर्धनदास जीवनलाल पटेल व प्रिय सखी श्रीमती शोभा पराशर के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने कृष्णभक्ति सम्प्रदायों से सम्बन्धित साहित्य मुझे उपलब्ध कराया व अपने आशीर्वाद व स्नेह से मुझे अनुग्रहित किया ।

श्रीमती हँसा मेहता लाइब्रेरी बड़ौदा के विभागाध्यक्ष व यहाँ के सभी सहयोगी भाई-बहनों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस सन्दर्भ में अपना सहयोग प्रदान किया ।

इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में जिन पुस्तकों व शोध प्रबन्धों आदि की सहायता ली गई हैं, उनके लेखकों, विद्वानों के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए मैं उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन करती हूँ ।

अपने इस शोध कार्य को कदाचित् मैं कभी पूर्णता प्रदान न कर सकती, यदि मुझे मेरे पति श्री दिनेशचन्द्र पोखरियाल जी का सहयोग व प्रेरणा न मिली होती । अपनी अति व्यस्तता के बावजूद भी उन्होंने मुझे जो सहयोग प्रदान किया वह नि:सन्देह मेरे लिए गौरव की बात है । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना औपचारिकता का पालन करना है ।

अन्त में इस शोध - प्रबन्ध की सफलता हेतु मैं अपने समस्त गुरूजनों, प्रियजनों का हृदय से आभार मानती हूँ, जिनका प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग इस सन्दर्भ में मुझे प्राप्त हुआ । इति ।

प्रभा पन्त